स्वाध्याय मंडलों की स्थापना कल्पवृक्ष का आरोपण

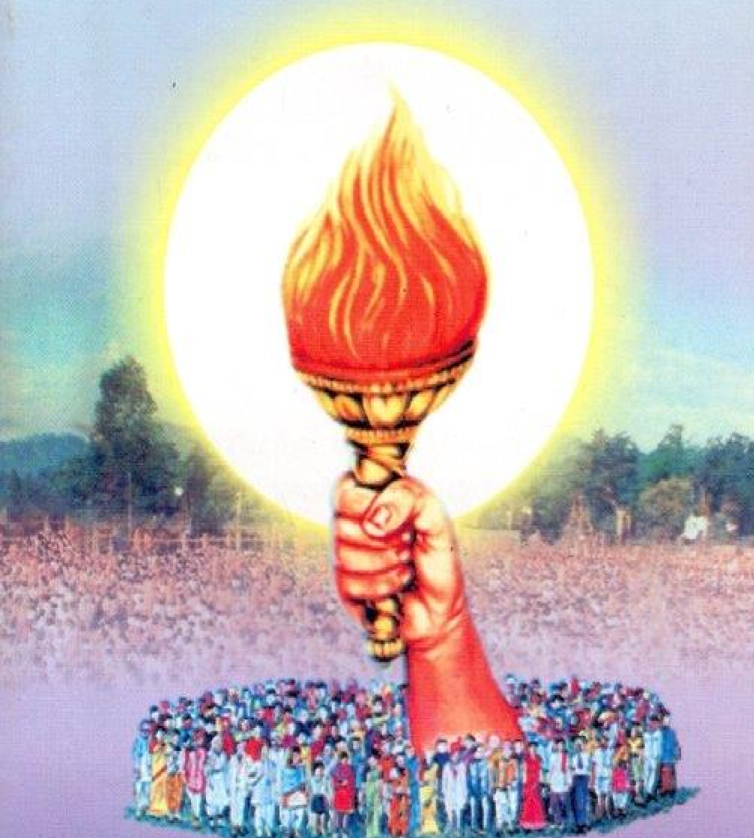

स्वाध्याय मंडलों की
स्थापना
कल्पवृक्ष का आरोपण

✱

लेखक :
ब्रह्मवर्चस्

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१० मूल्य : ६.०० रुपये

प्राक्कथन

अज्ञानता के कारण मानव जीवन दु:खों से भरा रहता है। यदि ज्ञान हो तो अभावों में भी प्रसन्न रहा जा सकता है। युग द्रष्टा पूज्य गुरुदेव ने दिव्य दृष्टि से समझ लिया था कि सभी दु:खों का मूल कारण अज्ञान है। इसी अज्ञान को दूर करने हेतु उन्होंने ज्ञानयज्ञ की योजना चलाई। ज्ञानयज्ञ के दो माध्यम हैं—सत्संग और स्वाध्याय। ग्रंथ प्रकाशन की व्यवस्था आसान एवं सर्वसुलभ होने से अब स्वाध्याय ही बेहतर साधन हो सकता है। दुश्चिंतन को मिटाने वाले, सद्साहित्य की आवश्यकता की पूर्ति पूज्यवर ने युग साहित्य का सृजन करके की। युग साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने के लिए तरह-तरह के प्रयोग किए, जिनमें स्वाध्याय मंडलों की स्थापना को पूज्यवर ने कल्पवृक्ष की संज्ञा दी। इसके माध्यम से युग निर्माण मिशन के सभी कार्यक्रम स्वल्प साधनों से पूरा होने की योजना बनाई। स्वाध्याय मंडल की स्थापना पाँच प्रारंभिक सदस्यों द्वारा स्वाध्याय से प्रारंभ होती है, जो तीस सदस्यों द्वारा स्वाध्याय तक पहुँच जाती है। तीस सदस्यों का यह स्वाध्याय मंडल शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ आदि भवनों वाले प्रज्ञा संस्थानों के समतुल्य मिशन की गतिविधियों को चलाते हैं। स्वाध्याय मंडल के पास चल-अचल संपत्ति न होने के कारण वित्तैषणा-लोकैषणा से बचे रहना आसान होता है। पूज्यवर ने इस पुस्तक में युग साहित्य का महत्त्व, स्वाध्याय की आवश्यकता, स्वाध्याय मंडलों की स्थापना एवं उनकी गतिविधियों पर प्रकाश डाला है और हम सबसे स्वाध्याय मंडल बनाने की आशा सँजोई है। उनकी आकांक्षा को आदेश मानते हुए सभी को अपने क्षेत्र में स्वाध्याय मंडल की स्थापना करनी चाहिए।

व्यवस्थापक

युग निर्माण योजना, मथुरा

नव जागरण के लिए युग साहित्य का स्वाध्याय

साधन सुविधाओं की दृष्टि से अपना समय पूर्वजों की तुलना में कहीं अधिक सुसंपन्न है। वैज्ञानिक, आर्थिक और बौद्धिक प्रगति ने इन दिनों इतनी साधन सामग्री प्रस्तुत की है जिसकी कि पूर्वजों ने भी कल्पना तक न की होगी। इतने पर भी जन साधारण के स्वास्थ्य, संतोष और संतुलन के क्षेत्रों में बेतरह गिरावट हो रही है। आर्थिक तंगी, परिवारों में खींचतान और समाज में विसंगठन, अपराधों का प्रचलन निरंतर बढ़ रहा है। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रों में इस कदर समस्याएँ बढ़ रही हैं कि किसी भी क्षण महाविनाश की घड़ी सामने आ सकती है। अपराध, बहु प्रजनन, दुर्व्यसन, विग्रह, आक्रमण का माहौल, भविष्य को अधिकाधिक अंधकारमय बनाता जा रहा है। सरकारों द्वारा अपनाए जाने वाले सुधार-प्रयत्न सफल नहीं हो रहे हैं। साज-सँभाल की सीमा है, किंतु बढ़ती हुई अनैतिकता जैसी अराजकता उत्पन्न करती है, उसकी रोकथाम बाहरी नियंत्रण के आधार पर बन पड़ना कठिन है।

असंख्य समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं का एकमात्र कारण है—मानवी दृष्टिकोण में आदर्शों के प्रति अनास्था की अभिवृद्धि, चिंतन और चरित्र में निकृष्टता का समावेश। यह क्रम यथावत चलता रहा तो मात्र शासकीय या आर्थिक उपायों से समाधान नहीं हो सकेगा। बनाने की तुलना में बिगाड़ने का क्रम आगे रहा तो एक दिन सर्वनाशी गतिरोध प्रस्तुत होकर ही रहेगा।

सामयिक समस्याओं का समाधान और उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण इसी एक तथ्य पर आधारित है कि जितना प्रयास सुविधा साधनों के संवर्द्धन के लिए किया जा रहा है, उतना ही ध्यान लोक मानस को परिष्कृत करने, व्यक्तित्वों में उत्कृष्टता बढ़ाने पर दिया जाए। प्राचीन काल में इसी पक्ष को समुन्नत बनाए रहने के लिए मूर्धन्यों के प्रबल प्रयास नियोजित रहते थे। ऋषियों, साधुओं और ब्राह्मणों के प्रयास इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु रहते थे। फलतः यह देश नर-रत्नों की खदान था। यहाँ देवता रहते थे और इस धरती पर स्वर्ग बिखरा पड़ा था। इस उक्ति का तात्पर्य इतना ही है कि सतयुगी वातावरण में व्यक्ति की आस्थाएँ, संवेदनाएँ, आकांक्षाएँ, विचारणाएँ और गतिविधियाँ उत्कृष्टता के साथ सुसंबद्ध थीं। फलतः व्यवहार में स्नेह-सहयोग की कमी नहीं थी। जो साधन उपलब्ध थे, उन्हीं को मिल-बाँटकर खाते और हँसती-हँसाती, हलकी-फुलकी जिंदगी जीते थे। जहाँ ऐसी मनःस्थिति ओर परिस्थिति रहेगी, वहाँ स्रष्टा की सर्वोत्तम संरचना के रूप में उत्पन्न हुआ मनुष्य स्वयं सुखी रहेगा और सर्वत्र सुख-शांतिकी वर्षा करेगा।

इन दिनों प्रवाह उलट गया है। चिंतन और चरित्र में निकृष्टता घुसी और व्यवहार प्रचलन पर दुष्टता, भ्रष्टता के तत्त्वों ने अपना आधिपत्य जमा लिया है। परिणति सामने है। हम असंख्य समस्याओं से उलझे हैं और सर्वनाश के दलदल में क्रमशः अधिकाधिक गहरे धँसते चले जा रहे हैं। इन दिनों छाया अनास्था का संकट, दुर्भिक्ष से भी भयंकर है। मर्यादाएँ तोड़ डालने पर, बाँध टूटने पर जल-जंगल एक कर देने वाले संकट से भी अधिक विनाश होता है। संकीर्ण स्वार्थपरता का प्रवाह ऐसा है, जिसकी बाढ़ में सब कुछ बहता चला जाता है। उच्छृंखलता का प्रचलन सब कुछ तोड़-मरोड़ कर रख देने वाले तूफान से अधिक भयानक है। महामारियों में मनुष्यों के शरीर मरते हैं, पर निकृष्टता के प्रति बढ़ती अभिरुचि तो आत्मा को ही अर्द्धमृतक बनाकर दिवंगतों से भी बुरी दशा में ला पटकती है।

सामूहिक आत्महत्या और महाविनाश के पथ पर जिस प्रकार मनुष्य समुदाय इन दिनों उत्साहपूर्वक घुड़दौड़ लगा रहा है। उसे देखते हुए रोमांच हो उठता है और लगता है कि भविष्य को अंधकारमय बनाने वाले इस प्रवाह को कोई दैवी चमत्कार ही रोक सकता है।

इन दिनों की चित्र-विचित्र आकृति-प्रकृति वाली अनेकानेक समस्याओं, विपत्तियों, विभीषिकाओं का एकमात्र कारण आस्था संकट है। अदूरदर्शिता, स्वार्थपरता जैसी निकृष्टताएँ मिल-जुलकर आस्था संकट उत्पन्न करती हैं और जब-जब वह दावानल भड़कता है तो उसकी लपेट में गीले-सूखे सभी आते हैं। शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, समथ-असमर्थ सभी उस माहौल से सरदी-गरमी की तरह प्रभावित होते हैं। इन दिनों यही हो रहा है। मानवीय गरिमा को अपनाए रहना तो दूर उसे अनुभव करना, स्वरूप और उत्तरदायित्व तक समझना कठिन हो रहा है। इस समूची स्थिति का पर्यवेक्षण करने के उपरांत चिंतन करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि जनमानस को शालीनता का पक्षधर बनाया जाए तथा लोकचिंतन में दूरदर्शी विवेकशीलता का सघन समावेश किया जाए। इससे कम में बात बनती ही नहीं। यदि आदर्शवादिता की पक्षधर विचार क्रांति न हो सकी, यदि सर्वतोमुखी नवसृजन का आधारभूत उपचार प्रज्ञा अभियान व्यापक न बन सका तो समझना चाहिए कि मानवी गरिमा ने पराजय स्वीकार कर ली और आत्मरक्षा के निमित्त हस्तगत हुए अस्त्र-शस्त्रों को पटककर पतन-पराभव की शरण में रहने की नीति अपना ली। यदि ऐसा हुआ तो समझना चाहिए संस्कृति ने आदिमकाल के वनमानुषों की बिरादरी में वापस लौटने का रास्ता जाने-अनजाने में अपना लिया।

ऐसी दशा में अपने को, अपने प्रियजनों को, अपने समाज को, विश्व को, संस्कृति को विनाश पथ से विरत करने का एक ही उपाय है कि जन साधारण को वस्तुस्थिति की जानकारी कराई जाए और परित्राण का उपाय भी ढोल पीटकर सुझाया जाए कि प्रचलित

मान्यताओं, आकांक्षाओं, आदतों, परंपराओं, क्रियाकलापों में अधिकांश ऐसी हैं, जिसमें औचित्य कम तथा अनौचित्य का अनुपात अधिक बढ़ गया है। भ्रांतियों, विकृतियों और अवांछनीयताओं की इतनी अधिक मात्रा जीवन के, समाज के हर क्षेत्र में भर गई है कि उसे ऊपरी लीपापोती से नहीं सुधारा जा सकता है। इसके लिए कुछ बड़े कदम उठाने होंगे। बड़े का तात्पर्य है—गलाई–ढलाई जैसा उपक्रम। टूटे–फूटे धातु खंडों के लिए यही नीति अपनानी पड़ती है। उन्हें हानिकारक कूड़े–कचरे के रूप में जगह घेरने और ठोकरों के व्यवधान खड़े करने की स्थिति में नहीं रहने देना हो तो फिर एक उपाय शेष रह जाता है कि एक बार दुस्साहस सँजोया जाए और उस कचरे को भट्टी में गलाकर, उपयुक्त साँचों में ढाला और ऐसे उपकरणों में बदला जाए जिन्हें उपयोगी, आवश्यक, महत्त्वपूर्ण, मूल्यवान कहा जा सके।

लोकचिंतन में उत्कृष्टता की, आदर्शवादिता की प्रतिष्ठापना के इस प्रयास पुरुषार्थ को संक्षेप में विचार क्रांति कहा जा सकता है। इसमें नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्र की अवांछनीयताओं के उन्मूलन तथा सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के द्विपक्षीय प्रयासों का समावेश है। अपने समय की यह सबसे बड़ी आवश्यकता है। उलटे को उलटकर सीधा किया जा सकता है। विचारों को विचार ही काटेंगे, काँटे से काँटा निकलेगा और विष उपचार विष से ही होगा। अनुपयुक्त विचारणाओं को, प्रचलनों को निरस्त करने के लिए मानवी अंतराल को सुसंस्कृत बनाने वाली उन विविध विभूतियों को अर्जित करना होगा, जिन्हें अध्यात्म की भाषा में श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा कहते हैं। प्रज्ञा साहित्य इसी प्रयोजन के लिए युगांतरीय चेतना के रूप में इन दिनों प्रकट हुआ है। दूरदर्शी विवेकशीलता का पुनर्जीवन उसका लक्ष्य है। संक्षेप में इन प्रयासों को लोकमानस के परिष्कार के निमित्त अग्रगामी बनाए गए प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक प्रयत्नों का समुच्चय कह

सकते हैं। चिंतन से चरित्र बनता है। मनःस्थिति परिस्थितियों की जन्मदात्री है। इस तथ्य को सर्वोपरि मान्यता देते हुए, परिवर्तित प्रयत्नों की रूपरेखा खड़ी की गई है।

युग परिवर्तन के इस पुण्य प्रयास का शुभारंभ श्रीगणेश चिंतन और चरित्र में आदर्शवादिता का, दूरदर्शी विवेकशीलता का समावेश करने वाले स्वाध्याय उपक्रम को व्यापक बनाने की योजना के साथ किया गया है। निकृष्टता सहज-साध्य है। पानी ढलान की ओर बहता है और वस्तुएँ ऊपर से नीचे की ओर गिरती हैं। मनुष्य के संबंध में भी यही बात है। यदि ऊँचा उठना-उठाना है तो समर्थ साधन जुटाने पड़ते हैं। जनमानस में उत्कृष्टता का अभिवर्द्धन भी ऐसे ही प्रबल प्रयासों की अपेक्षा रखता है। चिंतन को प्रभावित करने वाले माध्यम हैं—स्वाध्याय, सत्संग, चिंतन और मनन। इन चारों में स्वाध्याय प्रमुख है। शेष तीनों की सुव्यवस्था इस प्रथम चरण के उपरांत ही पूरी बन पड़ती है।

स्वाध्याय के नाम पर कथा-पुराणों के पठन-श्रवण का ढर्रा चलता रहता है और सत्संग के नाम पर परलोक-देवलोक का ऊहापोह कहा-सुना जाता है। इससे इस पुण्य-प्रक्रिया का वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं होता। युगधर्म की माँग है कि व्यक्ति के जीवन से संबंधित व्यवहार में आए दिन काम आने वाली और समय-समाज को प्रभावित करने वाली तात्कालिक समस्याओं के कारणों और निवारणों का समाधान प्रस्तुत करने वाले तथ्यों पर आधारित यथार्थवादी विचारणा के साथ संपर्क सधे। स्वाध्याय की आवश्यकता इतने से कम में पूरी होती ही नहीं। 'स्व' का अर्थ है-अपना। 'अध्याय' का अर्थ है—अध्ययन। जिससे अपने व्यक्तित्व से संबंधित उत्थान-पतन का निरूपण हो, उसी साहित्यिक अध्ययन का नाम स्वाध्याय है।

इस उद्देश्य के लिए भटकाव में प्रकाश उत्पन्न करने वाला, व्यवहार में आ सकने वाला साहित्य आज एक प्रकार से अनुपलब्ध

ही है। इस कमी को प्रज्ञा अभियान ने पूरा किया है और जितना बन पड़ा उतना साहित्य ऐसा छापा है जो संव्याप्त अंधकार के बीच प्रकाश स्तंभ की तरह सर्वसाधारण का मार्गदर्शन कर सके।

इन दिनों सत्संग की आवश्यकता भी स्वाध्याय ही पूरी करता है, क्योंकि तत्त्वदर्शी युग-मनीषियों तक पहुँच सकना, उनके साथ यथेष्ट समय तक परामर्श करते रहना, बढ़ती हुई व्यस्तता के कारण संभव नहीं रहा। फिर मुद्रण कला का विकास होने के उपरांत वैसी आवश्यकता भी नहीं रही। अब अपनी सुविधा के समय में, अभीष्ट विषयों पर उच्चस्तरीय युग मनीषियों का सत्संग लाभ ले सकना युग साहित्य के माध्यम से सरलतापूर्वक उपलब्ध है। सत्संग के नाम पर सिर-फिरे लोगों की सनकें सुनने और अपना समय तथा मस्तिष्क खराब करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि प्रज्ञा साहित्य घर बैठे पढ़ा जाए और इस माध्यम से स्वाध्याय और सत्संग की उभयपक्षीय आवश्यकता एक साथ पूरी कर ली जाए।

लगता यह है कि कार्य असंभव-सा है। इतने बड़े जनमानस को प्रभावित कर उन्हें सही दिशा देना लगता तो कठिन है, पर उसका समाधान तो सरल है। व्यापक अंधकार को एक टिमटिमाता दीपक चुनौती दे सकता है। जाग्रत आत्माओं में से थोड़े-से भी संकल्पवान उभरें तो अग्रिम पंक्ति में खड़े होकर वह मोर्चा सँभाल सकते हैं, जिसे अकेले हनुमान द्वारा समूची लंका उजाड़ देने की, अकेले अगस्त्य द्वारा समुद्र सोख लेने की, अकेले भगीरथ द्वारा गंगावरण की उपमा दी जा सके। जो करने योग्य काम है, वह एक ही है—जनसमुदाय के प्रवाह को उलटा जाए। उलटे को उलटकर सीधा किया जाए। वही जनमानस की परिष्कार प्रक्रिया के अंतर्गत होगा। इस विशाल योजना का शुभारंभ कैसे हो? इसके लिए गाँधीजी द्वारा कुछेक को साथ लेकर नमक सत्याग्रह आरंभ किए जाने और फिर उस विद्रोह का विस्तार होते-होते 'करो या मरो'

वाली महाक्रांति तक जा पहुँचने की पिछले दिनों घटित हुई ऐतिहासिक प्रक्रिया का स्मरण किया जा सकता है।

युग चेतना को अग्रगामी बनाने का उत्तरदायित्व महाकाल ने प्रज्ञा परिवार की जाग्रत आत्माओं के कंधों पर डाला है। उन्हें अग्रिम मोर्चे पर खड़ा किया है और लोकमानस के परिष्कार की प्राथमिक आवश्यकता पूरी करने को जुट पड़ने के लिए प्रेरित एवं बाधित किया है। चुनौती को स्वीकार करते हुए प्रत्येक सृजन शिल्पी को अपना कार्यारंभ इसी प्रकार करना चाहिए कि युग चेतना को हृदयंगम कराने वाले प्रज्ञा साहित्य से जन-जन को अवगत-अनुप्राणित करने का प्रयास करें। इसके लिए घर-घर अलख जगाएँ। स्वाध्याय मंडलों का गठन इसी दृष्टि से किया गया है। यह संगठन बिना किसी प्रकार का कार्य हरज किए, क्षति उठाए या त्याग-बलिदान का साहस सँजोए मात्र इतना प्राथमिक प्रयास करने भर से चल पड़ेगा कि अपने संपर्क क्षेत्र में जो भी विचारशील आते हों, उनमें से न्यूनतम पाँच को प्रज्ञा साहित्य नियमित रूप से पढ़ाने, वापस लेने का व्रत लें और उसे निभाएँ। जो आधा घंटा नित्य युग चेतना को पढ़ें या सुनें वे सभी इस स्वाध्याय संगठन के सदस्य जाने जाएँगे। इस प्रयास को जितने उत्साहपूर्वक जिस क्षेत्र में चलाया जाएगा, उसमें उसी अनुपात से नव जागरण के चिह्न प्रकट होंगे। कारण यह है कि प्रज्ञा साहित्य जिस युग मनीषा द्वारा सृजा गया है, उसकी ऊर्जा असाधारण है। जो पढ़ेगा, सुनेगा, वह आलोक के क्षेत्र में प्रवेश करेगा और स्वयं को बदलने तथा समय को पलटने में सुनिश्चित रूप से संलग्न दृष्टिगोचर होगा।

भव्य संरचना का आरंभिक शिलान्यास

पिछले एक हजार वर्ष का समय चिंतन क्षेत्र का अज्ञानांधकार युग कहा जा सकता है। उसमें भ्रांतियों, विकृतियों और दुष्प्रवृत्तियों का इतना अधिक कूड़ा-करकट घुसा है, जिसकी सड़ांध से सर्वत्र विषाक्तता ही भरी दीखती है। प्रस्तुत अगणित विपत्तियाँ और विपन्नताएँ उसी की देन हैं। चिंतन-चेतना के इसी स्वरूप को यदि यथावत रहने दिया जाए तो लगा हुआ घुन शहतीर को खोखला करेगा। विषाणुओं का परिकर यदि फेफड़े में छोटा-सा स्थान बना ले तो फिर देर-सबेर में सुडौल काया का भी अंत होकर रहेगा। आज का चिंतन-प्रवाह प्रायः इसी स्तर का है। उसके प्रभाव क्षेत्र में आने के उपरांत शरीर, मन, परिवार, समाज, सब कुछ विषाक्त होता चला जा रहा है। समृद्धि, शिक्षा, कला, सुविधा सामग्री की प्रस्तुत अभिवृद्धि को मानवी इतिहास में अद्‌भुत-असाधारण कहा जा सकता है। यदि चिंतन भी मानवी गरिमा के अनुरूप होता तो स्थिति-परिस्थिति ऐसी रही होती, जिस पर देवता ईर्ष्या करते और स्वर्ग को निछावर किया जा सकता।

अपने समय की एक भूल है—चिंतन की उत्कृष्टता को महत्त्व न मिलना। व्यक्तित्व को सुसंस्कारी बनाने की आवश्यकता एवं परिणति की ओर ध्यान न जाना। सुविधा-साधनों की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता, पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि उसका प्रयोक्ता यदि हेय स्तर का रहा तो फिर कुछ भी

हाथ न लगेगा। उसका दुरुपयोग ही बन पड़ेगा। आग की चपेट में जो भी सस्ती-महँगी वस्तु आएगी, वह भी मात्र ईंधन की तरह ही जलेगी। घटिया चिंतन और ओछा व्यक्तित्व रहते, न तो उचित रीति से, उचित मात्रा में वैभव अर्जित हो सकेगा और यदि हुआ भी तो उसका उपयोग अपने लिए, दूसरों के लिए, मात्र संकट खड़े करने भर के लिए होता रहेगा। समृद्धि से तात्कालिक लिप्सा तो कोई भी पूरी कर सकता है, किंतु यदि उसका सत्परिणाम अभीष्ट हो तो फिर यह अनिवार्य होगा कि प्रयोक्ता का दृष्टिकोण एवं प्रयोग क्रम उच्चस्तरीय बने।

चिंतन की निकृष्टता के रूप में जो कूड़ा-कचरा जमा पड़ा है और जनमानस को प्रभावित करता रहा है, उसे बुहारने के लिए सामान्य बुहारी की नहीं वरन तूफान जैसे अंधड़ की आवश्यकता पड़ेगी। इन दिनों नियति की संतुलन व्यवस्था ने ऐसा ही प्रवाह उत्पन्न किया है, जिसे विचार क्रांति या प्रज्ञा अभियान कहा जा सकता है। इसके अंतर्गत नवयुग की ऐसी विचारधारा का प्रस्तुतीकरण किया गया है जो प्रस्तुत मान्यताओं, आदतों और परंपराओं का नए सिरे से पर्यवेक्षण और निर्धारण कर सके। युगांतरीय चेतना के अंतर्गत ऐसी ही सर्वांगपूर्ण विचार प्रक्रिया का निर्माण किया गया है और उसे प्रज्ञा साहित्य के रूप में जनसाधारण के लिए प्रस्तुत किया गया है। इस छोटे प्रयास से निकट भविष्य में आशातीत और आश्चर्यजनक परिवर्तन होने की अपेक्षा की जा सकती है।

इस नितांत सस्ते, सर्वसुलभ किंतु उच्चस्तरीय, सर्वथा व्यावहारिक तत्त्व चिंतन से भरे-पूरे साहित्य को अधिकाधिक लोगों द्वारा पढ़ा जाना वह उपाय है, जिसके सहारे विचार क्रांति की व्यापक आवश्यकता को सामान्य प्रयत्नों से ही पूरा किया जा सकता है। इतना बन पड़ा तो व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलेगा, चिंतन बदलेगा और उसका सीधा प्रभाव चरित्र पर पड़ेगा। युग परिवर्तन

का यही मार्ग है। व्यक्ति बदले तो युग बदले। हम सुधरेंगे तो युग सुधरेगा। यह सुधार-परिवर्तन ही प्रस्तुत अगणित समस्याओं का एकमात्र हल है।

विचारों की शक्ति कितनी प्रबल-प्रचंड होती है, इसे व्यक्तिगत जीवन में हुए महान परिवर्तन पर दृष्टिपात करके सहज ही समझा जा सकता है। नारद के प्रखर परामर्श ने वाल्मीकि, ध्रुव, प्रह्लाद, पार्वती आदि असंख्यों की दिशाधारा बदल दी। बुद्ध के परामर्श से अंगुलिमाल, हर्षवर्धन, अशोक आदि ने अपने पूर्व प्रवाह का कायाकल्प ही कर डाला था। सूरदास, तुलसीदास आदि कितनों ने अपनी पुरानी केंचुल पूरी तरह बदल कर फेंक दी थी। संसार के महामानवों में से प्रत्येक की दिशाधारा मोड़ने-मरोड़ने में मात्र विचारशक्ति की ही भूमिका रही है, भले ही वह कहीं से भी प्राप्त क्यों न हुई हो। शंकराचार्य, तुकाराम, गाँधी आदि जन्म से ही वैसे नहीं थे जैसे उच्चस्तरीय विचारों के अवलंबन से उनके प्रयासों ने नया जामा पहना और नया कार्यक्रम अपनाया। यह प्रक्रिया हर छोटे-बड़े महामानव के व्यक्तिगत जीवन में किसी-न-किसी माध्यम से संपन्न हुई है।

व्यापक सामाजिक क्रांतियों के मूल में यही प्रखर-प्रेरणा काम करती दृष्टिगोचर होगी, भले ही बाद में उनका घटनाक्रम किसी भी रूप में घटित क्यों न होता हो। साम्यवाद की विचारधारा से आज संसार का आधे-से अधिक जनसमुदाय पूरी तरह या आंशिक रूप से प्रभावित है। घटनाक्रम का परदा उठाकर देखा जाए तो उसके पीछे कार्लमार्क्स की लेखनी को डायनामाइट की विशालकाय सुरंग जैसी भूमिका निभाते देखा जा सकता है। उसी चिनगारी ने दावानल की तरह प्रकट होकर विश्व के अधिकांश भाग को अपनी लपेट में ले लिया है। प्रजातंत्र के जन्मदाता रूसो की लेखनी किस प्रकार संसार भर की विवेक-विचारणा को झकझोरने में समर्थ हुई। किसी की समझ न आने वाला, सर्वथा असंभव

दीखने वाला—'जनता द्वारा जनता पर स्वयं का शासन' सिद्धांत कार्यान्वित हुआ। यह एक जादुई सपने जैसा चमत्कार है। रूसो की लेखनी न उठी होती तो संभवत: आज भी प्रजातंत्र किन्हीं अन्यान्य तत्त्वदर्शनों में से एक होता और किन्हीं पुस्तकालयों में विराजता। जबकि आज राजमुकुटों के श्मशानों पर प्रजातंत्रीय व्यवस्था सुरम्य उद्यानों की तरह लहलहाती देखी जा सकती है। तीन-चौथाई विश्व में आज प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था है। इसे विचार चेतना का प्रस्फुरण कह सकते हैं।

अमेरिका में दास-प्रथा की गहराई तक घुसी जड़ों को उखाड़ने का श्रेय श्रीमती स्टो की एक पुस्तक 'टाम काका की कुटिया' को दिया जाता है। वह न लिखी गई होती तो वहाँ इतना प्रचंड आंदोलन न उभरा होता और लाखों निरीहों को न जाने कब तक उत्पीड़न सहते रहना पड़ा होता। यूरोप को पोपवाद के अंधविश्वास से छुड़ाने में मार्टिन लूथर की भूमिका अनंत काल तक स्मरण की जाती रहेगी। भारत में दयानंद, विवेकानंद, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, तिलक, अरविंद आदि ने जो विचार जनसाधारण को प्रदान किए, उनके लिए पीढ़ियाँ उनकी कृतज्ञ रहेगी।

ईसाई धर्म के विस्तार में क्रिश्चियन मिशन द्वारा संसार की समस्त भाषाओं में किए गए विचार-प्रसार का, साहित्य-प्रकाशन का असाधारण महत्त्व है। किसी की विचारणा प्रभावित करके ही उसे अभ्यस्त ढर्रे से विरत करके उत्थान-पतन के असाधारण मार्ग पर चलाया जा सकता है। गीता-रामायण का भारतीय जनमानस पर कितना गहरा प्रभाव है, उसे देखते हुए सहज ही समझा जा सकता है कि साहित्य की कितनी क्षमता होती है। भारतीय संस्कृति के रूप में ऋषियों ने जो महान अनुदान दिए हैं, उनका एकमात्र माध्यम उनके द्वारा रचा गया शास्त्र साहित्य ही है, जो अनंत काल तक अपना दिव्य आलोक ज्योतिर्मय किए रहेगा। उसकी महत्ता प्रत्यक्ष एवं सामयिक प्रवचनों से कहीं अधिक है।

उपर्युक्त विवरणों से किसी भी विचारशील को यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि उच्चस्तरीय विचारों को जनजीवन में प्रवेश कराने के लिए आलोक भरे साहित्य का कितना अधिक प्रभाव है। अब तो सत्संग भी साहित्य में ही केंद्रीभूत हो गया है। महान मनीषियों का सान्निध्य सदा उपलब्ध न होना और मुद्रण कला के आविष्कार से सत्साहित्य सरलतापूर्वक मिल सकना, यह दोनों ही संयोग मिलकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विचार क्रांति के लिए युगांतरीय चेतना को शिक्षित लोग पढ़ें और अशिक्षित सुनें तो वह प्रयोजन पूरा हो सकता है, जिसे 'लोकमानस का परिष्कार' कह सकते हैं। यदि यह प्रक्रिया सचमुच ही चल पड़े और यह प्रयास वस्तुतः व्यापक हो सके तो समझना चाहिए कि प्रज्ञा अभियान के प्रतिपादनों से, जन-जन के मन-मन को युग-चिंतन के साथ जोड़ने और अवांछनीयता से विरत करके औचित्य का पक्षधर बनाने में सफलता मिल सकती है।

उथले व्यक्तियों के उथले प्रतिपादन तो ऐसे ही बेपर की उड़ानें बनकर छितराते, लातें खाते और उपहासास्पद बनते रहते हैं, परंतु युगऋषियों द्वारा काल मंथन की प्रज्ञा साधना का आधार लेकर जो प्रतिपादन प्रस्तुत किए जाते हैं, उनके बारे में बात ऐसी नहीं है। विवेक समर्थित तथ्यों पर आधारित ऐसी युगांतरीय चेतना तो सदा व्यापक बनती और सफल होती रही है। पहले उन्हें विज्ञजन अपनाते हैं बाद में जनसाधारण के गले उतरने योग्य बन जाती है। प्रभात किरणें सर्वप्रथम शिखरों पर चमकती हैं। बाद में उनके आलोक से समूचा धरातल ज्योतिवान होने लगता है। ऋतु प्रभावों की क्षमता ऐसी होती है कि जड़-चेतन को उनकी क्षमता मानने और तदनुरूप अपनी गतिविधियाँ बदलने के लिए विवश होना पड़ता है। वर्षा में जल-जंगल एक होते और धरातल पर हरे कालीन बिछते देखे जा सकते हैं। शीत से सभी सिकुड़ते हैं, पेड़ तक अपने पत्ते गँवा बैठते हैं। गरमी में चक्रवात घूमते, अंधड़ चलते और गरमी से प्राणियों

को हाँफते, मुँह छिपाने के लिए छाया ढूँढ़ते देखा जा सकता है। वसंत आया नहीं कि वनस्पतियाँ फलों से लदती हैं, पशु-पक्षी कुदकते-फुदकते हैं और कोयलों-भौरों के झुण्ड अपनी तान सुनाते फिरते हैं। यह ऋतु प्रभाव का चमत्कार है। प्रचंड विचारों के प्रवाह को भी ऐसे स्तर का समझा जा सकता है। वातावरण बना तो फिर अनुगमनकर्त्ताओं की कमी नहीं रहती। बुद्ध को लाखों परिव्राजक मिले। गाँधी जी को सत्याग्रहियों की कमी नहीं पड़ी। रामादल में न जाने कहाँ-कहाँ से रीछ-वानर आ घुसे। गोवर्द्धन उठाने वाले ग्वाल-वालों का संख्याबल, साहस और उत्साह देखते ही बनता था। इसी को कहते हैं—ऋतु प्रभाव जैसा वातावरण।

स्वाध्याय मंडलों की स्थापना वाला प्रज्ञा अभियान का प्रस्तुत चरण ऐसा ही है, जिसके पीछे युगांतरीय चेतना की अदृश्य प्रचंड प्रेरणा अपनी प्रखरता का परिचय देती हुई देखी जा सकती है। ऐसे प्रसंगों का विस्तार होते देर नहीं लगती। एक चिनगारी देखते-देखते दावानल बन सकती है और सुविस्तृत क्षेत्र को भस्मसात कर सकती है। ईसा, बुद्ध, गाँधी आदि के रूप में उत्कृष्टता की पक्षधर क्रांतियाँ भी आँधी-तूफान की तरह उठीं और अपना प्रयोजन पूरा करने के उपरांत ही रुकीं। इस महत् कार्य के लिए संकल्पवान परिजनों के उठ खड़े होने भर की देर है। संकल्प की शक्ति महान है। यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि जो भी अपने संकल्प के प्रति सच्चा होगा और उसके प्रति निष्ठा, लगन, परिश्रम का परिचय देगा, वह सीमाबद्ध होकर नहीं रह सकता। प्रबल प्रेरणा अपने संपर्क क्षेत्र को प्रभावित करती और अनुयायी बनाती रहती है। प्रबल मन और कर्म का एकीकरण करने के उपरांत चोर, लबार, व्यभिचारी, शराबी, जुआरी, दुर्व्यसनी अपना गिरोह बनाते और परंपरा चलाने में सफल होते रहते हैं तो कोई कारण नहीं कि प्राणवान, निष्ठावान और संकल्पवानों को सीमाबद्ध होकर रहना पड़े। वंश वृद्धि की तरह विचार विस्तार का भी अपना क्षेत्र है और

उसमें भी एक से अनेक होने की स्रष्टा के मूल संकल्प की तरह परिपूर्ण गुंजाइश है।

स्वाध्याय मंडल प्रक्रिया के विस्तार की बात सोचनी हो तो उसके लिए पूरी-पूरी गुंजाइश विद्यमान है। लाखों प्रज्ञा परिजनों में से सौ के पीछे एक भी प्रज्ञापुत्र स्तर का हो और वह मात्र एक स्वाध्याय मंडल बनाता चले तो ढेरों मंडल बन सकते हैं। प्रत्येक के तीस सदस्य होने पर उस पुण्य प्रयोजन में निरत व्यक्तियों की संख्या करोड़ों में हो जाती है। इतने व्यक्ति एक से पाँच वाली छलांग मात्र तीन बार लगा दें तो उसकी लपेट में संसार भर में बसने वाला मनुष्यों का समुदाय सरलतापूर्वक आबद्ध हो सकता है। स्वाध्याय एक व्यक्ति तक सीमित हो तो वह नगण्य हो सकता है, पर यदि उसके साथ एक से पाँच की विस्तार वाली चक्रवृद्धि प्रक्रिया जुड़ जाती है तो समझना चाहिए कि अपनी उपयोगिता और वरीयता के कारण उसको विश्वव्यापी बनाने की पूरी-पूरी संभावना विद्यमान है। आरंभ में ही प्रयास लड़खड़ा जाए और होली की आग बुझ जाए तो निराशा का अवसर आ सकता है।

स्मरण रहे बात भजन-पूजन की तरह स्वाध्याय के रूप में पन्ने उलट देने की चिह्नपूजा कर देने जैसी नहीं है। इसके पीछे पढ़ने वाले को झकझोर डालने वाले और उठाकर खड़ा कर देने वाले प्रभातकाल जैसी ऊर्जा एवं प्रेरणा भरी पड़ी है। जो प्रज्ञा साहित्य नियमित रूप से पड़ेगा, वह कुछ नए ढंग से सोचेगा और अंततः "हम बदलेंगे के साथ-साथ युग बदलेगा" की भूमिका निभाते हुए भी दृष्टिगोचर होगा। उसी विचारणा को जीवंत कहा जा सकता है, जो कार्य रूप में विकसित हो। बीज वही सराहनीय है जो अंकुरित होने का समय आने पर अपने जीवंत होने का प्रमाण प्रस्तुत करे। युगांतरीय चेतना इस दृष्टि से प्राथमिक परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुकी है। एक बीज ने गलकर जिस वृक्ष के रूप में विकास किया है, उससे उत्पन्न हुई फसल को

लाखों दानों के रूप में देखा जा सकता है। प्रज्ञा परिवार के वर्तमान लाखों सदस्य इस बात के साक्षी हैं कि उन्हें युग साहित्य के माध्यम से मिलने वाली ऊर्जा ने कितना नरम-गरम किया है और बदलकर कहाँ-से-कहाँ ला टिकाया है। उतनी साक्षियों पर किसी को विश्वास हो सके तो उसे यह भी अनुभव करना चाहिए कि प्रज्ञा साहित्य के स्वाध्याय का प्रचलन यदि छोटे श्रीगणेश से आरंभ होकर क्रमशः अधिकाधिक व्यापक और विस्तृत होता चला गया तो उसकी क्या परिणति हो सकती है? स्रष्टा के 'एकोऽहं बहुस्यामि' संकल्प की ही तरह वंश वृद्धि की सर्वत्र दीख पड़ने वाली प्रक्रिया विचार-विस्तार पर भी लागू हुए बिना रह नहीं सकती। शर्त एक ही है कि उसके मूल में तथ्य एवं सत्य हो और ज्वलंत करने के लिए प्राणवान ऊर्जा स्रोत व्यक्तित्व। स्वाध्याय मंडलों की स्थापना के पीछे यह सभी आधार विद्यमान हैं।

देर श्रीगणेश भर की है। देरी बिगुल बजाने वालों की है। समय की माँग, मानवी गरिमा की गुहार एक सुसज्जित सेना की तरह कमर बाँधे खड़ी है। उसे प्रयाण का आदेश मिलने भर की देर है। चतुरंगिणी कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचेगी और क्या-से-क्या कर गुजरेगी? इसे अपनी यही आँखें देख और उन दृश्यों का जादू चमत्कार जैसा अनुभव कर सकती हैं। स्वाध्याय मंडलों की स्थापना का छोटा काम इसी दृष्टि से प्रज्ञा परिजनों को सोंपा गया है कि इसे एक कल्पवृक्ष उद्यान का बीजारोपण मानकर उसे सरलतापूर्वक संपन्न कर सकें और नवसृजन में अपनी भागीदारी का एक ऐतिहासिक अध्याय पूर जोड़ सकें।

स्वाध्याय मंडल—छोटे प्रज्ञा संस्थान

प्रज्ञा संस्थान २४०० से बढ़कर अब ४००० के करीब जा पहुँचे। प्रज्ञा परिवार की अंसख्य आत्माएँ ऐसी हैं जो इमारत बनाने के लिए आवश्यक सहयोग एवं साधन उपलब्ध न कर सकी। एकाकी प्रयत्नों से वह प्रक्रिया बन नहीं पड़ रही थी। इस असमंजस को दूर करने के लिए असंख्य प्रज्ञा-पुत्रों को अपने पुरुषार्थ से कोई चिरस्मरणीय संरचना खड़ी कर सकने की दृष्टि से इस वर्ष स्वाध्याय मंडलों की स्थापना का अभियान चलाना चाहिए। इसे प्रकारांतर से बिना इमारत वाले, बिना प्रक्रिया वाले प्रज्ञा संस्थान ही कहना चाहिए, क्योंकि उत्तरदायित्व तो उन्हें भी छोटे रूप में वही निभाने होंगे, जिन्हें बड़े शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों को निभाने के लिए आरंभ में ही कहा गया था और अब भी कहा जा रहा है।

इक्कीसवीं सदी के इस पाँचवें वर्ष में २४ हजार स्वाध्याय मंडलों की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है। इस छोटे सृजन को कोई भी भावनाशील प्रज्ञापुत्र सहज ही अपने एकाकी बलबूते संपन्न कर सकता है। उसके साथ जुड़े हुए उत्तरदायित्वों को बिना किसी कठिनाई के भली प्रकार वहन कर सकता है। यह प्रत्येक जाग्रत आत्मा की प्रतिभा-प्रखरता को परखने की कसौटी भी है, जिसमें जाँच पड़ताल की जाती है कि क्या वह प्रवाह के साथ बहने वाला तिनका मात्र है या उसमें निज का भी कुछ दमखम है। समूह में कुछ पता नहीं चलता। गधे-घोड़े सब एक पंक्ति में चलते हैं, पर जब उन्हें अलग से घुड़दौड़ में अपनी-अपनी विशेषता दिखाने का अवसर मिलता है, तो विदित होता है कि कौन कितने पानी में है?

व्यक्तिगत प्रतिभा और वरीयता समूह में प्रायः प्रकट ही नहीं हो पाती है और सफलता का श्रेय प्रायः सभी में बँट जाता है।

बिना इमारत के प्रज्ञा संस्थान, स्वाध्याय मंडल बनाने और चलाने में लगन, सेवा और तत्परता की दृष्टि से विभेद को स्पष्ट करके रख देते हैं। "एकला चलो रे.........." रवींद्रनाथ का उद्‌बोधन ऐसे अवसरों पर न केवल साहस प्रदान करता है, वरन आत्मविश्वास भी उत्पन्न करता है। सृजन का शुभारंभ और उसको पूर्णता तक पहुँचाने वाला संकल्पवान प्रयास ही मानवी प्रतिभा का मापदंड है। संकल्प तभी सार्थक है, जब स्वयं प्रज्ञा परिजन स्वाध्याय के प्रति उत्साह दिखाएँ। अपना व्रत निभाने पर ही दूसरों पर प्रभाव डालने वाला आत्मबल उभरता है और वाणी प्रभाव की क्षमता निखरती है। अपने संपर्क क्षेत्र के चार ऐसे व्यक्ति ढूँढ़ निकालना तब कोई कठिन कार्य नहीं जो मंडल की नैष्ठिक सदस्यता के लिए सहमत हो जाएँ। इतना भर हो गया तो समझा जा सकता है कि प्रारंभिक गठन पूर्ण हो गया।

आरंभ में इस समुदाय को पिछली पुरानी अखण्ड ज्योति, प्रज्ञा अभियान, युग निर्माण योजना, युग शक्ति गायत्री आदि पत्रिकाओं से भी स्वाध्याय का शुभारंभ कराया जा सकता है। कुछ-न-कुछ पुस्तकें भी युग साहित्य की पास में हो सकती हैं या अन्यान्यों से माँगी जा सकती हैं। इन्हें अदल-बदलकर पढ़ते रहने का नियमित क्रम चल पड़े तो समझना चाहिए कि स्वाध्याय मंडल का उपक्रम ढर्रे पर चल पड़ा, परंतु यह स्थायी व्यवस्था तो नहीं हुई। इसके लिए खरीदने का खर्च भी उठाना पड़ेगा। इसकी व्यवस्था ठीक इसी प्रकार हो सकती है कि मंडल के सूत्रधार पाँच नैष्ठिक सदस्य अपने-अपने ज्ञानघट रखें और उसमें दैनिक अनुदान जमा करें। सेंतालीस वर्ष पूर्व जब युग निर्माण योजना का प्रारंभ हुआ था, उस समय परिजनों को सदस्यता शुल्क 'दस पैसा' और 'एक घंटा' समय नित्य देते रहने की शर्त लगी थी। ईमानदार सदस्य तब से

लेकर अब तक उस शपथ का निर्वाह सामर्थ्यानुसार करते आ रहे हैं। आस्था विहीनों की बात दूसरी है, जिन्हें स्वार्थ भर याद रहता है, कर्त्तव्य चुटकी बजाते ही विस्मृत हो जाता है। अब सेंतालीस वर्ष में महँगाई कहाँ-से-कहाँ जा पहुँची। ऐसी दशा में ज्ञानघट की राशि बढ़ाकर एक रुपया कर दी गई तो उसे भी वहन किया जाना चाहिए। स्वाध्याय मंडल के नैष्ठिक पाँच सदस्य अपने ज्ञानघटों में एक रुपया नित्य डालें तो महीने में १५०) रुपए बन जाएँगे। इतने में तीस सदस्यों को एक पौष्टिक आध्यात्मिक भोजन नियमित रूप से अच्छे जलपान की तरह मिलना आरंभ हो जाएगा। भूख बढ़ेगी तो उसका भी प्रबंध होगा, पर आरंभिक ढर्रा घुमाने के लिए मंडल की आरंभिक व्यवस्था पाँच ज्ञानघटों की राशि से ही हो सकती है और एक सुनिश्चित रचनात्मक कार्य सुव्यवस्थित रूप से चलता रह सकता है।

स्वाध्याय मंडलों की प्रज्ञा संस्थानों के रूप में भूमिका इससे आगे की बात है। बिना इमारत के प्रज्ञा संस्थानों के रूप में इन्हें एक प्रकार के छोटे ट्रस्ट ही कहा जा सकता है। अतएव छोटे रूप में उत्तरदायित्व भी उनके वही हैं, जो बड़ों के लिए, बड़े रूप में, बड़े क्षेत्र में निर्धारित किए गए हैं। पाँच नैष्ठिक सदस्य एक प्रकार से ट्रस्टी हैं। सूत्र संचालक, कार्यवाहक मैनेजिंग ट्रस्टी, अध्यक्ष वह है जिसने मंडल का शुभारंभ किया और अपने को अग्रिम मोर्चे पर खड़ा करके सहयोगियों का एक परिवार सँजोया। सूर्य ने भी यही किया है। उसका संबंध नवग्रहों से है। इन ग्रहों के अपने-अपने चंद्रमा हैं। इसी प्रकार स्वाध्याय मंडल को एक सौर परिवार और अनुसदस्यों को उपग्रह कहा जा सकता है। संस्थापक को इस परिवार का सूर्य कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

प्रज्ञा संस्थानों का प्रथम कार्य अपने क्षेत्र के हर शिक्षित को घर बैठे नियमित रूप से प्रज्ञा साहित्य पढ़ाने वापस लेने के लिए झोला पुस्तकालय चलाना है। अन्य चार निर्धारण इसके बाद के हैं।

स्वाध्याय मंडलों को भी उसी विधा को अपनाने के लिए झोला पुस्तकालय चलाने को कहा गया है। संस्थापक को स्वाध्याय की नियमितता शपथपूर्वक मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री की तरह निभानी होती है। पाँच सदस्यों वाला मंत्रिमंडल वैसा ही व्रत ग्रहण करता है। आधार स्तंभों का यह समुच्चय संकल्प का निर्वाह करेगा तो ही उनसे संबंधित अन्य पाँच-पाँच सदस्य भी उस अनुबंध का निर्वाह करेंगे। जड़ें ही सूखें तो फिर टहनियों और पल्लवों का ईश्वर ही रक्षक है। प्रज्ञा अभियान का मेरुदंड स्वाध्याय है। यह व्यवस्था न चले तो समझना चाहिए कि बिना मेरुदंड का शरीर अधर में लटका है। स्वाध्याय मंडल छोटे हैं तो क्या, इस प्रथम प्रयास से, अपनी छोटी परिधि के अंतर्गत, इस अनुबंध का प्रतिपालन नियमित रूप से चलाने की परिपूर्ण तत्परता बरतनी चाहिए।

दूसरे, तीसरे, चौथे कार्यक्रमों का रास्ता सभी के लिए खुला है। दूसरा चरण सत्संग है, तीसरा संगठन। छोटे रूप में यह जन्म-दिवसोत्सव की प्रक्रिया अपनाने पर सहज ही चल पड़ेगी। इन छोटे आयोजनों में सत्संग तो प्रमुख है ही, साथ ही एक विचारधारा के लोग, जब एक उद्देश्य से, एक जगह एकत्रित होते हैं, तो सहज ही संगठन बनने लगता है। स्वाध्याय मंडलों को प्रज्ञा साहित्य के पठन-पाठन का क्रम चलाने के साथ ही सदस्यों-अनुसदस्यों के जन्म-दिवसोत्सव मनाने की सत्संग प्रक्रिया को भी इसी उत्साह से संपन्न करना चाहिए। यदि अपने ही मंडल को लिया जाए एवं तीस सदस्यों के बारह महीनों में तीस जन्मदिवसोत्सव मनें तो एक महीने में औसतन ढाई की बात बनती है। इतने प्रयोजन होते रहें, सदस्यगण एक-दूसरे के घरों पर पहुँचते रहें तो आत्मीयता निश्चित रूप से बढ़ेगी और घनिष्ठता का, संगठन का वातावरण बनता चला जाएगा। फिर हर जन्मदिवसोत्सव में मित्र, पड़ोसियों, स्वजन संबंधियों को बुलाने का भी तो उपक्रम चलता है। इस प्रकार सदस्य और संपर्क वाले मिलकर सहज ही पचास-सौ का समुदाय बन जाता है, इसमें

सत्संग प्रक्रिया भली प्रकार चलती रह सकती है। गायत्री यज्ञ एवं जन्मदिन का धार्मिक कर्मकांड तो होगा ही साथ ही स्थानीय लोगों के संगीत प्रवचन भी होते रहें तो उपस्थित लोगों को मिशन के संबंध में अधिकाधिक जानने, संपर्क में आने और लाभ लेने का अवसर मिलेगा। यदि टैप रिकार्डर, सी.डी. प्लेयर, टेलीविजन की व्यवस्था हो तो शांतिकुंज से प्रेषित युग संगीत एवं प्रवचन भी सुनाए जा सकते हैं। प्रज्ञा साहित्य का कोई अंश भी पढ़कर सुना सकते हैं।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि प्रज्ञा संस्थानों की इमारतों में प्रतिमाओं पर हजारों-लाखों का धन लगा है। स्वाध्याय मंडल यदि पाँच नैष्ठिक सदस्यों के ज्ञानघटों से ही अपनी अर्थ व्यवस्था चलाने भर में समर्थ हों तब तो उनसे कुछ कहना नहीं है। विवशता में इतना ही बहुत है, किंतु यदि उनमें से कोई प्रतिभावान हों, तो थोड़ी और अर्थव्यवस्था जुटाएँ और वे उपकरण एकत्रित करें जो लागत में स्वल्प होते हुए भी लोकमानस के परिष्कार में नितांत आवश्यक हैं। उन्हें प्रज्ञा अभियान की आलोक वितरण योजना का अविच्छिन्न अंग माना गया है। यह चार उपकरण हैं—(१) ज्ञानरथ, (२) टेलीविजन, (३) सी.डी. प्लेयर, (४) लाउडस्पीकर। उन्हें एक-एक करके या एक साथ खरीदने की जितनी अर्थ व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है, वह ऐसी नहीं है जिन्हें मिलजुलकर तीस व्यक्तियों का परिवार एक ही साथ उत्साह भरी उमंग में पूरा न कर सके। आशा की जानी चाहिए कि संस्थान की इमारत न बन सकने पर भी उसकी आत्मा का छोटा संस्करण उपर्युक्त चार उपकरणों के रूप में प्रत्येक जीवंत प्रज्ञा स्वाध्याय मंडल देर-सबेर में अवश्य तैयार ही कर लेगा। प्रज्ञा साहित्य पिछले दिनों ढेरों छपा है। हर महीने नया भी छपता रहता है। इसमें से किस क्रम से किसे मँगाया जाए, इस झंझट में न पड़कर उचित यही है कि गायत्री तपोभूमि, मथुरा के पते पर पत्र लिखकर साहित्य सूची को मँगा

लिया जाए, जिसे देखकर शेष प्रकाशन मथुरा से स्वयं ही इस प्रकार मँगाया जाता रहे कि सदस्यों को उपयुक्त ढंग से क्रमबद्ध पठन-श्रवण की सुनिश्चित सुविधा मिलती रहे।

मिशन को अगले दिनों निरक्षरता, गरीबी, रुग्णता जैसी विपन्नताओं से निपटना है। संकीर्ण स्वार्थपरता, विलासिता, अहमन्यता के कुचक्र के दलदल में फँसी हुई जनचेतना को उबारना है। अपराधों और आक्रमणों का आतंक समाप्त करना है। अवांछनीयता, अनैतिकता, मूढ़मान्यता, अंध परंपरा का चक्रव्यूह तोड़ना है। यह सुधार के निमित्त भट्‌टी गरम करने और अनुपयुक्त प्रचलनों को गलाने वाला पक्ष हुआ। इसी सामग्री की नए साँचे में ढलाई भी तो करनी है। नए युग का, नए समाज का, नए मानव का, नए दृष्टिकोण का ऐसा निर्माण भी करना है, जिसे युग निर्माण कहा जा सके। उत्कृष्ट चिंतन, आदर्श चरित्र, नीतियुक्त व्यवहार और क्षतिपूर्ति कर सकने वाला बहुमुखी सृजन कार्य, जैसी अनेकानेक आवश्यकताओं को भी तो पूरा करना है। ऑपरेशन से मवाद निकाल देना ही नहीं, घाव को सही ढंग से भर देना भी चिकित्सक का उत्तरदायित्व है। समग्र परिवर्तन में समर्थ विचार क्रांति का शुभारंभ स्वाध्याय मंडलों की स्थापना के साथ नए सिरे से, नए रूप में किया जा रहा है। समझना चाहिए कि अंकुर फूटेंगे, पौधे लहलहाएँगे, छायादार वृक्ष बनेंगे, फल-फूलों से लदेंगे। स्वाध्याय मंडलों का श्रीगणेश व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के रूप में दृष्टिगोचर होगा। जाग्रत युग चेतना उन अनेकानेक कार्यक्रमों को हाथ में लेगी और पूरा करके दम लेगी, जो उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। प्रज्ञा अभियान के संचालकों ने स्वाध्याय मंडलों की स्थापना के साथ ऐसे ही सपने सँजोए और संकल्प किए हैं। उनके पूरा होने की प्रतीक्षा-अपेक्षा वे सभी लोग कर सकते हैं, जिन्हें इस मिशन के पीछे स्रष्टा की महती प्रेरणा और योजना होने जैसा विश्वास है। संचालकों ने इसी कारण

स्वाध्याय मंडलों को प्रज्ञा संस्थानों के समतुल्य महत्त्वपूर्ण माना है, क्योंकि ये छोटे होते हुए भी उद्देश्य और कार्यक्रम की दृष्टि से बड़े प्रज्ञा संस्थानों से बढ़ कर ही हैं। एकाकी प्रयत्न से बन पड़ने तथा किन्हीं थोड़ों के परिपूर्ण उत्तरदायित्व एवं मनोयोग के द्वारा चलाए जाने के कारण उनका महत्त्व किसी भी प्रकार कम नहीं आँका जाएगा। शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों की व्यवस्था, निर्माण एवं संचालन बहुत श्रमसाध्य, व्ययसाध्य एवं कानूनी झमेलों से भरा हुआ है। ट्रस्टियों की श्रद्धा, निष्ठा एवं आर्थिक पारदर्शिता भी आवश्यक है। परिजनों की प्रामाणिकता इस संदर्भ में अति अनिवार्य है जो कई बार न मिलने पर प्रज्ञा संस्थान मात्र ईंट-पत्थर की इमारत अथवा निर्जीव मंदिर होकर रह जाते हैं और वहाँ से कोई मिशन की गतिविधि नहीं चलती। इसके अभाव में महाकाल का उद्देश्य पूरा नहीं होता। इसीलिए उन्होंने हाड़-मांस की शक्तिपीठ बनाने की बात कही। इसी भावना के अनुरूप स्वाध्याय मंडलों की स्थापना बहुत व्यावहारिक और अनेक झमेलों से दूर रखने वाली ऐसी योजना है जिसमें परिजनों के अहंकार एवं लोकैषणा के पिशाच को पछाड़ने में सफलता मिलती है। इस प्रकार २४००० स्वाध्याय मंडलों की स्थापना का लक्ष्य है। इसे पूरा करने के लिए सभी प्राणवान प्रज्ञापुत्रों से विशेष आग्रह भरा अनुरोध किया गया है कि वे इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए आगे आएँ और अपने क्षेत्र में ऐसी स्थापनाएँ करने के लिए परिव्राजकों की तरह परिभ्रमण करें, अलख जगाएँ और हजारी किसान का उदाहरण प्रस्तुत करें।

प्रज्ञा संस्थानों के प्राण—पंचसूत्री कार्यक्रम

प्रज्ञा संस्थानों की इन दिनों व्यापक स्थापना हुई है। बड़ी गायत्री शक्तिपीठ बनी हैं। मझोले प्रज्ञापीठों का निर्माण हुआ है। घरों में प्रज्ञा मंदिर बन रहे हैं तथा नैष्ठिक उपासकों द्वारा निजी प्रयास से स्वाध्याय मंडली बनी हैं। इन सभी की गणना प्रज्ञा संस्थानों में होती है। इन सभी के लिए आरंभिक कार्य पद्धति एक जैसी है। इसका प्रथम चरण पंच सूत्री योजना को क्रियान्वित करने के रूप में निर्धारित किया गया है। सभी संस्थान उन्हें अपनी-अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार व्यापक बनाएँ, किंतु ध्यान रखें कि इन्हें कार्यान्वित करने के प्रयास अनिवार्य रूप से चलने चाहिए। इनकी उपेक्षा किसी भी छोटे-बड़े संगठन को नहीं करना चाहिए।

जनमानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन यही दो सामयिक लक्ष्य इन दिनों सामने हैं। इनकी पूर्ति के लिए युगांतरीय चेतना का आलोक जन-जन के मन-मन तक पहुँचाया जाना चाहिए। घर-घर अलख जगाया जाना चाहिए। जहाँ यह प्रक्रिया चल रही होगी वहाँ मिशन को निश्चित रूप से जन समर्थन मिलेगा। जन समर्थन से ही जन सहयोग मिलने का आधार बनता है। कहना न होगा कि प्रज्ञा मिशन ने प्रस्तुत विभीषिकाओं से जूझने तथा उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने के लिए जो कार्यक्रम बनाए हैं, उनकी पूर्ति के लिए जन सहयोग आवश्यक है। इसे उपलब्ध करने पर ही समय की विकृतियों को उखाड़ फेंकने और उनके स्थान पर

उत्कृष्ट आदर्शवादिता का प्रचलन करने की बात बनती है। अगले दिनों युग परिवर्तन और नव निर्माण की दृष्टि से बहुत कुछ करने को पड़ा है। वह सब कुछ ऐसा है जिसे एकाकी नहीं किया जा सकता, उसे कंधे पर उठाने के लिए भावभरी जनशक्ति चाहिए। उसी के सहारे सेतुबंध बँधा, गोवर्द्धन उठा, स्वराज मिला तथा अन्यान्य महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न हुए। इसे अर्जित करने के लिए जन-जागरण का काम हाथ में लेना होगा। इसी प्रयोजन की प्राथमिक पूर्ति प्रज्ञा संस्थानों के लिए अनिवार्य घोषित की गई, जो पंचसूत्री योजना द्वारा संपन्न होती है।

पंचसूत्री योजना के पाँचों अंग शक्तिपीठों के पाँच प्राणों की तरह हैं। इनके बिना उनमें जीवन और जाग्रति आ नहीं पाएगी। निष्प्राण शक्तिपीठें प्रतिगामी देवालयों की तरह इस मिशन के माथे पर कलंक का ही टीका लगाएँगी। अतएव जिनने प्रज्ञा संस्थान बनाए हैं, वे पंचसूत्री कार्यक्रमों के संचालन का एक कदम और आगे बढ़ाएँ।

(१) झोला पुस्तकालय—अपने क्षेत्र के हर शिक्षित को घर बैठे, नियमित रूप से, बिना मूल्य प्रज्ञा साहित्य पढ़ाने और वापस लेने की प्रक्रिया इसी माध्यम से पूरी होती है। घर-घर, जन-जन तक युगांतरीय चेतना का अलख जगाने, आलोक पहुँचाने का यह सर्वोपरि उपाय है कि शिक्षित प्रज्ञा साहित्य पढ़ें और अशिक्षितों को सुनाएँ। झोला पुस्तकालय अमृत बाँटने का अभियान है।

स्वाध्याय मंडल के सभी सदस्य ज्ञानघट में न्यूनतम एक रुपया प्रतिदिन भोजन करने से पहले डालें। महीने में तीस रुपए का युग साहित्य खरीदकर अपने पास रखें। अपने परिचितों में स्वाध्याय के प्रति रुचि जाग्रत करें, उन्हें नियमित साहित्य देने और वापस लेने का क्रम चलाएँ। जो साहित्य के स्वाध्याय में रुचि लेने लगें उन्हें ज्ञानघट रखने और एक रुपया प्रतिदिन डालने की प्रेरणा दें और माह के तीस रुपए का युग साहित्य मँगाकर अपने परिचितों

को नियमित साहित्य देने और वापस लेने का क्रम चलाएँ। यही क्रम निरंतर चलता रहे तो शीघ्र ही बड़ी संख्या में स्वाध्याय करने वाले हो जाएँगे। प्रतिष्ठित, प्रामाणिक एवं सेवाभावी व्यक्ति यदि इस कार्य में रुचि लेने लगें तो जनसाधारण को इस साहित्य के स्वाध्याय का महत्त्व भी समझ में आएगा और देखा-देखी वे भी झोला पुस्तकालय चलाने लगेंगे। सेवानिवृत्त, व्यवसाय एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त परिजनों के लिए तो यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण सेवा का कार्य है।

(२) ज्ञानरथ—चार रबर के पहिया वाले स्टॉल रेलवे स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर घूमते हें। सड़क, बाजारों में तरह-तरह के डिजायनों को धकेल गाड़ियाँ, फेरी वाले चलाते हैं। इन्हीं में से कोई उपयुक्त डिजायन चुनकर या अपनी आवश्यकतानुसार किसी डिजायन की घरेलू गाड़ी बनाई जा सकती है। काँच के ढक्कन वाला, आकर्षक, प्रदर्शन का उद्देश्य पूरा कर सकने वाला सुसज्जित ज्ञानरथ न बन सके तो शाक-भाजी वालों जैसी खुली गाड़ी बहुत ही कम दाम में बन सकती है। धूप, गरमी और नमी से बचाने के लिए उस पर पारदर्शक प्लास्टिक ढके रखा जा सकता है। इन ज्ञानरथों के अब तक अनेक डिजायन बन भी चुके हैं, जिनमें कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें साइकिल सवार पैरों की सहायता से चला सकते हैं। इसकी लागत अधिक नहीं बैठती। हर जगह के मिस्त्री इन्हें हल्की, सुंदर एवं सस्ती बनाने में अपनी सूझ-बूझ का परिचय दे सकते हैं। पाँच हजार का साहित्य इसके लिए पर्याप्त हो सकता है। अधिक सामान रखने के लिए पहियों के बीच एक भंडारी भी रह सकती है।

इन चल पुस्तकालयों का मूल उद्देश्य घर-घर, जन-जन तक प्रज्ञा साहित्य पहुँचाने की सेवा करना है। इसे सुनियोजित करने के लिए इन ज्ञानरथों की अधिक उपयोगिता है। झोला पुस्तकालयों में थोड़ा साहित्य ही लेकर चला जा सकता है, छोटे गाँवों में तो उसी

की उपयोगिता है। हजारों झोला पुस्तकालय चल भी रहे हैं, पर ज्ञानरथ में तो इतना लद जाता है, जो हर दिन हजार घरों तक उसे पहुँचाने का दायित्व आसानी से पूरा करता रहे।

इसके अतिरिक्त इसमें पहियों से लेकर ऊपर तली तक चारों ओर बोर्ड लगाकर इतना आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है कि रास्ता चलते लोग उसे देखें, आकर्षित हों और खड़े होकर पूछताछ करके अपनी जिज्ञासा शांत करें। जन संकुल क्षेत्र में इसे ले जाया जाए तो लोग सहज ही आकर्षित होंगे। उन्हें प्रज्ञा साहित्य दिखाया, महत्त्व समझाया जा सके तो कोई कारण नहीं कि उसकी बिक्री न होने लग, यह दुहरा प्रयोजन हुआ। इससे राहगीर भी युग चेतना से परिचित होने का लाभ लेते हैं, साथ ही बिक्री कमीशन से इतना लाभ भी अर्जित होता रहता है कि उससे चलाने वालों का पारिश्रमिक भी निकलता रहे। यह बिक्री उन लोगों में भी होती है जो मुफ्त में नित्य झोला पुस्तकालय का साहित्य पढ़ते हैं। कुछ ही समय में उनमें से अनेक इतनी रुचि लेने लगते हैं कि उस ज्ञान संपदा को घर में रखने, अपने परिवार तथा पड़ोस को लाभ देने की बात सोचने लगते हैं। ऐसे लोग इतना सस्ता और इतना अच्छा साहित्य खरीदने में थोड़ा पैसा प्रसन्नतापूर्वक खरच करने लगेंगे। इस विक्रय से भी इस धकेल गाड़ी को चलाने वाले का खरच निकलने में सहायता मिलती है।

(३) दृश्य-श्रव्य उपकरण—ज्ञानरथ से स्वाध्याय की और टेलीविजन, सी.डी. प्लेयर से सत्संग की आवश्यकता पूरी होती है। लेखनी की तरह वाणी भी लोकमानस के परिष्कार का एक प्रभावी माध्यम है। सत्संग के लिए उपस्थिति चाहिए। अनास्था के युग में नव सृजन जैसे रूखे समझे जाने वाले संदर्भ में जनता को बड़ी संख्या में एकत्रित करना कठिन है और महँगा भी। इस कठिनाई का समाधान टेलीविजन से हो जाता है। इसमें लोकरंजन और लोकमंगल का अद्‌भुत समन्वय है। पड़ोस में ही यह आयोजन

हो रहा हो तो रात्रि के फुरसत वाले समय में ढेरों व्यक्ति मिनटों की सूचना पर एकत्रित हो जाते हैं।

टेप रिकार्डर के माध्यम से प्रेरणा भरे गीतों का प्रसारण होता है। युग प्रवर्तक संदेश इसी के माध्यम से जन-जन तक पहुँचने का सहज क्रम भी चलता रह सकता है। लाउडस्पीकर भी जोड़ा जा सके तो प्रातःकाल संदेश प्रसारण तथा कार्यक्रमों में भी उसका उपयोग होता रह सकता है। शांतिकुंज एवं गायत्री तपोभूमि, मथुरा में गीत व प्रवचन के कैसेट मिल जाते हैं।

(४) दीवार लेखन एवं स्टीकर—दीवारों पर लिखने के लिए कुछ आदर्श वाक्य निर्धारित हैं। उन्हें नीली या लाल पेंट और ब्रुश की सहायता से रास्ते के सहारे वाली दीवारों पर सुंदर अक्षरों में लिखा जा सकता है। जहाँ वैसा प्रबंध न हो वहाँ गेरू, हिरमिच, खड़िया या मुलतानी मिट्टी से भी यह लिखाई हो सकती है। दीवार लेखन करने से पूर्व दीवार के मालिक से अनुमति ले लेनी चाहिए। आदर्श वाक्य के नीचे 'युग निर्माण योजना, मथुरा', 'गायत्री तपोभूमि, मथुरा' अथवा स्थानीय शक्तिपीठ या ज्ञानमंदिर का नाम भी लिखा हो तो विचारवान व्यक्ति वहाँ से संपर्क कर आत्मोत्थान का मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। सर्व प्रथम यह कार्य सभी परिजनों को अपने घरों से प्रारंभ करना चाहिए और अपने परिचितों, परिजनों एवं संबंधियों से अपने द्वार पर सद्वाक्य लेखन सुनिश्चित कराएँ। घरों के भीतर ड्राइंग रूम, भोजन कक्ष, शयन कक्ष आदि में भी छपे हुए सद्वाक्य लेमीनेशन कराकर लगाए जा सकते हैं। जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व कम हैं, उन्हें टोली बनाकर क्षेत्र में निकल जाना चाहिए। ऐसा करने से एक रचनात्मक कार्य करने का उल्लास भी उनको होगा। व्यापारी वर्ग अपने धन से अनेक बोर्ड अथवा बैनर पर सद्वाक्य तथा सौजन्य से अपने प्रतिष्ठान का नाम देकर भी लगा सकते हैं। स्कूल-कॉलेजों में छात्रों को प्रेरणा देकर यह कार्य बड़े स्तर पर किया जा सकता है। स्काउटिंग, राष्ट्रीय

सेवा योजना, एन.सी.सी आदि के छात्र प्रतिवर्ष दस-पंद्रह दिन के प्रशिक्षण में दीवार लेखन के कार्यक्रम हो जोड़ लें तो इसका क्षेत्र में स्थायी प्रभाव पड़ेगा।

हैंड बैगों, अटैचियों, फर्नीचरों, आलमारी, खिड़कियों पर, घरों, कार्यालयों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में चिपकाने के लिए स्टीकर भी बहुत सुंदर और सस्ते हैं। शादियों, उत्सवों में उपहार के रूप में बाँटे जाने पर, प्रचार, विस्तार, वातावरण को नव-सृजन के अनुकूल बनाने में बहुत सहायक होते हैं।

(५) जन्म दिवसोत्सवों का प्रचलन—यह प्रकारांतर से पारिवारिक ज्ञान गोष्ठियों का एक नितांत सरल, सस्ता, आकर्षक, भावना पूर्ण तथा प्रभावी स्वरूप है। जन्मदिवस जिसका मनाया गया है, वह उस दिन का हीरो बनता है। सभी उसे शुभकामना प्रदान करते और पुष्प वर्षा करके फूलों से लादते हैं। इस भाव भूमिका में उसे कुछ दुर्गुण छोड़ने और सद्गुण अपनाने के लिए सहमत किया जाता है। यह व्यक्ति निर्माण हुआ। जिस घर में यह आयोजन हो रहा है, उसके परिवार के सदस्यों को अपने क्षेत्र में दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन और सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के बीजारोपण का मार्गदर्शन-प्रोत्साहन मिलता है। यह परिवार निर्माण हुआ। इस अवसर पर यज्ञ-पूजन के अतिरिक्त जो संगीत-प्रवचन होते हैं, उनसे समाज के अभिनव निर्माण और सुधार-परिवर्तन के संबंध में भी बहुत कुछ प्रेरणाएँ मिलती हैं।

उपर्युक्त पाँच कार्यक्रम पाँच सूत्री योजना के हैं। इन्हें अग्रगामी बनाए रखने के लिए पैसे की आवश्यकता पड़ेगी। इसकी पूर्ति ज्ञान घटों से की जाए। जहाँ भी मिशन के प्रति श्रद्धा-सहयोग की भावना उभरे, वहाँ घरों में ज्ञानघट रखवाएँ और उनकी राशि का उपयोग उपर्युक्त सत्प्रवृत्तियों के संचालन में किया जाए। अर्थ संतुलन बनाए रहने के लिए इस व्यवस्था को भी पंचसूत्री योजना जैसा ही महत्त्वपूर्ण मानकर चलना होगा।

युग ऋषि द्वारा रचित युग साहित्य का परिचय

युग ऋषि द्वारा वेद, पुराण, उपनिषद्, दर्शन, गायत्री विद्या, यज्ञ, कर्मकांड, संस्कार, प्रज्ञापुराण, गीत, अध्यात्म का वैज्ञानिक प्रतिपादन, क्रांतिधर्मी साहित्य, युग निर्माण साहित्य, उपासना-साधना, स्वास्थ्य, वनौषधि, शिक्षा, स्वावलंबन, व्यसन मुक्ति, पर्यावरण, नारी जागरण, व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण, आत्मचिंतन, अध्यात्मवाद, भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन, महापुरुषों के जीवन वृत्तांत, ज्योतिष आदि विषयों पर अनेकानेक पुस्तकें लिखी गई हैं। जिनका प्रकाशन युग निर्माण योजना, मथुरा द्वारा होता है। विस्तृत पुस्तक सूची युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३ के पते पर पत्र डालकर मँगा लें। स्वाध्याय मंडलों के संचालक पाँच सदस्य प्रतिमाह ३०) रुपया प्रति सदस्य एकत्रित करके १५०) रुपया प्रतिमाह का साहित्य अपनी रुचि से मँगा सकते हैं। उपर्युक्त विषयों पर छोटी-बड़ी पुस्तकें तथा वाङ्मय प्रकाशित किया गया है। यह साहित्य निम्नलिखित स्थानों से प्राप्त किया जा सकता है।

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

फोन नं०-(०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

फैक्स नं०-(०५६५) २५३०२००

गायत्री तीर्थ शांतिकुंज

हरिद्वार (उत्तराखंड)

फोन नं०-(०१३३४) २६०६०२

उक्त साहित्य स्थानीय विद्या विस्तार प्रचार केंद्र, साहित्य विस्तार पटल एवं अखण्ड ज्योति ज्ञान केंद्रों पर भी उपलब्ध है। साहित्य युग निर्माण योजना, मथुरा से मँगाने हेतु धनराशि ड्राफ्ट अथवा मनी आर्डर से अग्रिम भेजें।

दीवार लेखन हेतु कुछ सद्वाक्य

☐ अच्छी पुस्तकें जीवंत देव प्रतिमाएँ हैं। उनकी आराधना से तत्काल प्रकाश और उल्लास मिलता है।

☐ कुकर्मी से बढ़कर अभागा कोई नहीं, क्योंकि विपत्ति में उसका कोई साथी नहीं रहता।

☐ दूसरों के साथ वह व्यवहार न करो, जो तुम्हें अपने लिए पसंद नहीं।

☐ किसी का सुधार उपहास से नहीं, उसे नए सिरे से सोचने और बदलने का अवसर देने से होता है।

☐ अपनी रोटी मिल-बाँटकर खाओ ताकि तुम्हारे सभी भाई सुखी रह सकें।

☐ उन्हें मत सराहो जिनने अनीतिपूर्वक सफलता पाई और संपत्ति कमाई।

☐ सार्थक और प्रभावी उपदेश वह है, जो वाणी से नहीं, अपने आचरण से प्रस्तुत किया जाता है।

☐ परमेश्वर का प्यार केवल सदाचारी और कर्त्तव्यपरायणों के लिए सुरक्षित है।

☐ असफलता केवल यह सिद्ध करती है कि सफलता का प्रयत्न पूरे मन से नहीं हुआ।

☐ प्रसन्न रहने के लिए दो ही उपाय हैं, आवश्यकताएँ कम करें और परिस्थितियों से तालमेल बिठाएँ।

☐ अपना मूल्य समझो और विश्वास करो कि तुम संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो।

☐ मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं, वह उनका निर्माता, नियंत्रणकर्त्ता और स्वामी है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा